॥ आमुख ॥

अ) सूरदास का जीवन.

ब) रचनाएँ.

क) वल्लभ संप्रदाय.

ड) पुष्टिसंप्रदाय का दार्शनिक
विवेचन.

"आमुख"

"सूरदास का जीवन वृत"

वल्लभ संप्रदायी साहित्य समकालीन अन्य रचनाएँ तथा परवर्ती हिंदी अनुसंधान कर्ताओं की रचनाओं से सूरदास के जीवनवृत के बारे में जानकारी मिलती है।

सूरदास का जन्मस्थान, जाति, कुटुंब - परिवार -

सूरदास का जन्म दिल्ली के निकट सीही नामक गाँव में हुआ था। वे सारस्वत ब्राह्मण थे। सूरदास के माता पिता बंधु तथा वंश के बारे में निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है।

जन्मकाल -

वल्लभाचार्यजी के वंशज "रसिकदास" की रचना तथा वल्लभीय साहित्य से यह स्पष्ट होता है, कि - सूरदास का जन्म सं. १५३५ में हुआ था। सूरदास वल्लभाचार्य जी से दस दिन छोटे थे। इससे सूरदास की जन्मतिथि सं. १५३५ वैशाख शुक्ल ५ निश्चित होती है। इसी दिन वल्लभ संप्रदायी केंद्रों में सूर जन्मोत्सव मनाया जाता है।

सूर का अंधत्व

आधुनिक इतिहास लेखकों ने सूरदास को जन्मांध नहीं माना है। इनका कहना है, कुछ दिनों तक बाह्य जगत् का सूक्ष्म निरीक्षण करने के बाद सूरदास किसी कारण अंधे हो गये थे। इस संबंध में प्रभुदयाल मित्तल ने एक स्थान पर लिखा है कि सूरदास के जन्मांध होने के अनेक प्रमाण वल्लभीय साहित्य, तथा साम यिक रचनाओं में मिलते हैं। एक बार सूरदास की परीक्षा करने के लिए गोवर्धन पर्वत के श्रीनाथ के मंदिर में भगवान कृष्ण की वेषभूषा अलग प्रकार की गयी थी। सूर ने उस दिन कीर्तन में उसी का वर्णन किया। जब वल्लभाचार्यजी को इस बात का पता चला तो उन्होंने कहा, "सूरदास जी की ऐसी परीक्षा न करो। सूरदास परम भगवदीय हैं। ठाकुरजी के अनुग्रह से उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त है।

नाम तथा बाल्य काल -

सूरदास के अनेक नाम मिलते हैं। वे हैं सूरज, सूरजदास, सूर, सूरदास, सूरस्वामी तथा सूरश्याम आदि। ऐसा लगता है कि उनका मूलनाम सूरज होगा और बाद में उसका संक्षिप्त रूप "सूर" बाकी रहा होगा।

...२

सूरदास का परिवार गरीब था। जन्मजात अंध शिशु होने के कारण सूरदास घरवालों को बोझ लगते थे। उन्हें माता-पिता, बंधु आदि का स्नेह प्राप्त नहीं हुआ। सूर का बचपन दुःखद रहा थोडी सूझ-बूझ आते ही सूरदास घर छोडकर लाठी के सहारे चल पडे। उन्हें घर के किसीने नहीं रोका। सीही से चार कोस दूर तालाब के किनारे एक पीपल के नीचे वे रहने लगे। सूरदास को शकुन विद्या, कोमलकंठ और वाक्-सिध्दी की जन्मजात देन मिली थी। इससे पीपल के नीचे रहने समय उन्हें लोगों द्वारा आदर सम्मान मिला। इसी जगह सूर ने प्रथम बार शांति का अनुभव किया। यहाँ वे भक्ति एवं ज्ञान साधना करने लगे। ५

आयु के अठरहवें साल तक वे वहीं पर रहे। वहाँ उन्हें बहुतसा धन दान में मिला। तीर्थयात्री साधु-संतों द्वारा शास्त्र पुराणों की बातों से भी उनका परिचय हुआ। उनकी ख्याति फैलती गयी ; पर मन:शांति नष्ट हुई। अत: सं. १५५३ में वे अपने कुछ सेवकों के साथ मथुरा जाने निकले और सं. १५५४ में मथुरा पहुँचे। ६

वहाँ भी उन्हें लोगों की भीड के कारण एकांत न मिला अत: वे वहाँ से निकल पडे। आगरे से १५ कि. मि. दूरी पर रेणुका क्षेत्र के पास यमुना तट पर गऊघाट जाकर रहने लगे। यह स्थान जन बस्ती से दूर था।

गऊघाट सूरदास को अच्छा लगा। उनकी साधना शुरु हुई। यहाँ पर साधु-संत सूर से मिलने आते थे। यहाँ भी साधना में सूर को अपार ज्ञान राशी की प्राप्ति हुई। साथ ही उनका गायन भी साधनासे निरंतर निखर उठा। इन दिनों वल्लभाचार्यजी गोवर्धन पर्वत के नाथ मंदिर में उत्तम भजन -कीर्तन की व्यवस्था करना चाहते थे। सूरदास की असाधारण गान पटुता की बात सुनकर सं. १५६७ में वल्लभाचार्य खुद गऊघाट आए। गऊघाट पर वे तीन दिन रहे। वल्लभाचार्य इन दिनोंमें सूर के गायन पर प्रसन्न हुए और सूरदास की बिनती पर उन्होंने सूरदास तथा उनके शिष्यों को पुष्टिमार्ग की दीक्षा दी। सूरदास वल्लभाचार्यजी के साथ गोवर्धन पर्वत की ओर निकले। श्रीनाथ मंदिर में जाकर वल्लभाचार्यजी ने सूरदास को वहाँ की कीर्तन सेवा सौंपी। यहाँ वल्लभाचार्य रचित कृष्ण रचित को सुनकर सूर में कृष्ण लीला के सरस पद बनाने की क्षमता आ गयी। इस समय सूर की आयु सैंतीस साल की थी। अपने जीवनांत तक सूरदास इसी सेवा में रहे। उनका देहावसान सं. १६४० माघ शु. २ को हुआ। ७

: सूरदास की रचनाएँ :

सूरदास की समस्त रचनाओं को "सूरसागर" , "सूरसारावली" तथा "साहित्य लहरी" नामक इन तीन शीर्षकों में समाविष्ट किया जाता है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित इतिहास में सूरदास के नाम पर निम्न रचनाओंकी सूची दी गयी है।

१) "सूरसागर" - प्रकाशित रचना है।

२) "भागवत् भाषा" - सूरसागर का एक अंश है। इसे स्वतंत्र रचना माना है। यह अप्रकाशित है।

३) "दशमस्कंध टीका" - यह भागवत् के दशमस्कंध का अनुवाद है। सूरसागर का अंश है।

४) "सूरदास के पद" - यह सूरसागर का अंश है। कुछ पदों का स्वतंत्र छोटा संकलन है। प्रकाशित रचना है।

५) "नागलीला"- कालीय नाग संबंधी कथा इसमें है। यह रचना भी सूरसागर का अंश है।

६) "गोवर्धन लीला" - इसमें श्री कृष्ण द्वारा गोवर्धन उठानेकी लीला का वर्णन है। यह "सूरसागर " का अंश है।

७) "सूर पच्चीसी" - उपदेश का एक दीर्घ पद है। यह भी सूरसागर अंश है।

८) "प्राण प्यारी" - राधा और कृष्णा के विवाह वर्णन का यह एक दीर्घ पद है। इसे अप्रामाणिक माना गया है।

९) "ब्याहलो" - सूरसागर से ली हुई यह रचना है। इस में राधा और कृष्ण के विवाह का वर्णन है।

१०) "सूरसारावली" - "सूरसागर" की कुछ प्रतियों के साथ उपलब्ध "सूरसागर" का स्वतंत्र रूप है।

११) "सूरसागर सार" - "सूरसारावली" और "सूरसागर" के कुछ पदों का संकलन है।

१२) "साहित्य लहरी" - "सूरसागर" से अलग यह एक स्वतंत्र रचना है। इसमें १०८ पद है। प्राय: पद कुट पद हैं और क्लिष्ट हैं। इसमें शृंगार तथा काव्यशास्त्र निरूपण मुख्य हैं।

१३) "सूरशतक" - साहित्य लहरी के चुने हुए पदों का संग्रह है।

१४) "नल-दमयंती" - यह नल-दमयंती की कथा पर आधारित रचना है। इसे अप्रामाणिक माना गया है।

१५) "हरिवंशटीका" - यह भी एक अप्रामाणिक मानी गयी रचना है।

१६) "राम-जन्म" - "रामचरित मानस" की शैली में लिखी यह रचना सूरदासके नाम पर मिलती है। यह अप्रामाणिक रचना है।

१७) "एकादशी महात्म्य" - सूरदास के नाम मिलनेवाली यह एक अप्रामाणिक रचना है

१८) "सेवाफल" - सूरदास के नाम पर मिलनेवाली यह भी एक अप्रामाणिक रचना है।

सूरदास की रचनाओं का परिचय "सूरसागर" के स्वतंत्र साहित्यिक परिचय के बिना अधूरा रहेगा।

: "सूरसागर" का संक्षिप्त परिचय :

यह एक गेय मुक्तक काव्य है। "श्रीमद्भागवत्" के समान इसमें भी बारह स्कंध हैं। सूर ने सूरसागर की रचना के लिए "भागवत्" का आधार लिया है। फिरभी सूरसागर किसीभी तरह से "भागवत्" का अनुवाद नहीं है। इसमें सूरदास की पर्याप्त मौलिक उद्भावनाओं के दर्शन होते हैं।

"सूरसागर" के दशमस्कंध में ३,६३२ पद हैं, जो कृष्ण भक्ति-काव्य का गौरव और सूर-साहित्य की अमूल्य संपत्ति है। "भागवत्" कार कृष्ण के समूचे जीवन को लेकर चले हैं, जब कि सूर ने कृष्ण के जीवन के कोमलतम अंशो पर असंख्य लीला-पद रचे हैं और अन्य प्रसंगों को चलता-सा कर दिया है। "भागवत्" में कृष्ण की अनन्य प्रेमिका किसी गोपी का उल्लेख है जब कि सूरसागर में प्रेमरस-भीगी राधा की कल्पना की गई है। "सूरसागर" में "भ्रमरगीत" की कल्पना सूरदासकी कृष्ण भक्ति-काव्य को एक मौलिक देन है। सूर ने लोक-प्रचलित कृष्ण कथाओं का अपने "सागर" में स्तुत्य प्रयोग किया है। ८

कृष्ण-चरित्र के अंतर्गत आनेवाली अनेक घटनाओं और इतिवृत्तों का वर्णन होते हुए भी "सूरसागर" में प्रबंध रचना के विविध अंगों का समावेश नहीं है। प्रबंध रचना के

L

लिए आवश्यक गुण, जैसे कथा का शृंखला बद्ध प्रवाह, कथा के बीच-बीच में प्राकृतिकसूत्र, घटना स्थल के रूप में विविध स्थानों का वर्णन, चरित्रों का उत्तरोत्तर विकास, कार्य व्यापार की विविध अवस्थाओं के साथ घटना चक्रों की लडी में सूत्र की तरह संचरण कथा के भावात्मक स्थलों का चित्रण, सर्गों में प्रबंध का विभाजन, आदि. गुण सूरसागर में एकत्र नहीं हैं। वस्तुवर्णन की अपेक्षा भाव-चित्रण की ओर सूरदास ने विशेष ध्यान दिया है। अतः "सूरसागर" एक मुक्तक काव्य ही ठहरता है। १

इस काव्य में वर्णित वात्सल्य-वर्णन हिंदी साहित्य में अद्वितीय है। सूरदासकी साहित्यिक अमरता का यही मुख्यकारण बना है। "भ्रमरगीत" में आया विरह-शृंगार भी अनुपम है। संपूर्ण "सूरसागर" कृष्ण-भक्ति का सागर है।

"वल्लभाचार्य तथा पुष्टि संप्रदाय"

वल्लभाचार्य"का" जीवनवृत्त :-

इनका जन्म संवत् १५३५ में हुआ। बचपन में ही वल्लभाचार्य जी अत्यंत कुशाग्र बुध्दि के थे। ग्यारह वर्ष की आयु में ही इन्होंने अपने पिता के मार्गदर्शन में वेद, वेदांग, दर्शन और पुराणों का अध्ययन किया। वल्लभाचार्यजी ने तीन बार भारत भ्रमण किया था। इन्होंने अपने उत्तराधिकारी के हेतु विवाह किया था। इनके दो पुत्र थे; गोपीनाथ और विठ्ठलनाथ।

वल्लभाचार्यजी ने अपना सारा जीवन धर्म-प्रचार और धर्म-साधना में बिताया। वल्लभ जी अत्यंत मेधावी और भक्तों को भक्ति रस में प्रवाहित करनेवाले प्रभावी भक्त थे। संपूर्ण भारत भर में वल्लभाचार्यजी के असंख्य शिष्य थे।

वल्लभजी की रचनाएँ संस्कृत में हैं। इन रचनाओं की कुल संख्या के विषय में विवाद है। यह संख्या चौतीस से चौरासी तक मिलती है। इन ग्रंथों में "सुबोधिनी" और "अनुभाष्य" ये दो विशेष उल्लेखनीय हैं। सं. १५८७ जेष्ट कृष्ण १० के दिन वल्लभाचार्यजी का देहावसान हुआ।

पुष्टि संप्रदाय ---

वल्लभाचार्यजी ने अपने पूर्व के आचार्यों के पथ को छोडकर पुष्टि संप्रदाय की स्थापना की। यह शुद्धाद्वैतवादी विचार धारा है। इसके अनुसार ब्रह्म के अनुग्रह से ही जीव का पोषण होता है। "पोषणंतदनुग्रह: ।"

भारतीय धर्म साधना में कर्म, ज्ञान और भक्ति द्वारा ब्रह्म या मोक्ष की प्राप्ति बताई गयी है। वल्लभाचार्य जी ने भक्ति को अधिक महत्व देकर कहा, कि-- भक्त भक्ति द्वारा ब्रह्म में पूरी तरह लीन हो जाता है। वल्लभाचार्य ने कर्म, ज्ञान और भक्ति को ब्रह्म प्राप्ति की तीन अवस्थाएँ कहा और इन तीनों में भक्ति को सर्वोपरि स्थान दिया।

पुष्टिमार्गी भक्त बनने के लिए आवश्यक है, कि वह भक्त लोक और वेद के प्रलोभनों एवं फलों से दूर रहे, और अपने को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दे। इसी समर्पण से पुष्टिमार्ग का आरंभ होता है। भगवान के स्वरूप का अनुभव और उसकी लीला सृष्टी में प्रवेश करना इसका अंतिम उद्देश्य है।

भगवान की कृपा को पुष्टिमार्ग में परब्रह्म माना है। यही पुरुषोत्तम और लोक रक्षणार्थ संसार में लीला करनेवाले विष्णु के अवतार हैं। कृष्ण के सत्व, रज और तम तीन गुण हैं। सत्व गुण, विष्णु स्वरूप एवं लोक रक्षक है। "रजगुण" ब्रह्म स्वरूप सृष्टि करता है। "तमगुण" रुद्रस्वरूप संहार करनेवाला है। पुष्टिमार्ग की दार्शनिक मान्यताएँ इस प्रकार है -

१) ब्रह्म - वल्लभाचार्यजी के अनुसार श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। यह परब्रह्म अविगत, आदि, अनंत, अनुपम, अलख और अविनाशी है। श्रीकृष्ण वृंदावन में सभी गोपियों के मंडल के मध्य लीला-विहार करते हैं। यह भक्त- वत्सल और लीलाकारी हैं। लीलाओं के लिए ही कृष्ण अवतार लेते हैं। ये विष्णु के पूर्ण अवतार हैं। इनकी लीलाएँ लोकरक्षणार्थ होती हैं। इन लीलाओं का उद्देश मात्र लीला ही है।

२) जीव - पुष्टिमार्ग में जीव को ब्रह्म का अंश माना गया है। वल्लभाचार्यजीने जीवों की तीन श्रेणियाँ बनाई हैं। यह जीव मूलत: शुध्द होता है। अविद्या माया के प्रभाव में आकर जीव अपने मूल स्वरूप को भूल जाता है। अविद्या माया जीव को अनेक

...७

भ्रमों में डालती है। इससे जीव की दुर्गत होती है। यह अज्ञानी जीव माया के चक्कर में पडकर देह के धर्मों को ही अपना समझने लगता है। भगवत् कृपा से जीव का पोषण होता है तथा इसी कृपा से मुक्ति भी मिलती है।

३] जगत् और संसार - पुष्टिमार्ग की मान्यताओं के अनुसार जगत् ईश्वर से उत्पन्न हुआ है और यह अविकृत परिणाम है। उदा. जल और बुलबुले तथा कनक से कुंडलों की निर्मिती पुष्टिमार्ग में नाम, रूप तथा जीवों के परस्पर क्षणिक संबंध को संसार कहा गया है।

पंचमहाभूतों से निर्मित सृष्टि ही जगत् है। यह जगत् ईश्वर का अंश है और सत्य है। माया के कारण जगत् में संसार का भास होता है तथा जीव संसार में फँसता है।

४] माया - माया के संबंध में पुष्टिमार्ग के दर्शन शंकर अद्वैत से भिन्न विचारों की रचना मिलती है। अद्वैतवाद में शंकराचार्य ने ब्रह्म को छोडकर सभी चीजों को माया की संज्ञा दी है। वल्लभाचार्यजी इस मायावाद का खंडन करते हैं। वल्लभाचार्य के मतानुसार माया है भी तो वह ब्रह्म पर हावी नहीं हो सकती। शंकराचार्यजीने माया के संबंध में कहा है, कि माया का नाश होने पर जीव व जगत् दोनों की सत्ता का लोप होता है। पुष्टिमार्ग में माया का नाश होने पर केवल संसार का नाश होता है। जीव और जगत् की स्थिती बनी रहती है।

५] मोक्ष - मुक्ति - पुष्टिमार्ग में सलोक्य, सामीप्य, सारुप्य और सायुज्य इन चार प्रकारों की मुक्तिओं का वर्णन किया है। भगवान के लीलाधाम में पहुँचना सालोक्य मुक्ति है। उनके चरणों के सानिध्य में रहना सामिप्य मुक्ति है। कृष्ण के साथ उन्हीं के समान आचरण करना सारुप्य मुक्ति है और कृष्ण के साथ एकीकरण को प्राप्त करना सायुज्य मुक्ति है। सायुज्य मुक्ति में भक्त ईश्वर का एक अंग हो जाता है। इन मुक्तिओं के सिवा स्वरूपानंद मुक्ति का उल्लेख भी पुष्टिमार्ग में मिलता है।

६] रास - गोकुल में समस्त गोपियों के साथ कृष्ण की हुई एक क्रीडा को रास कहा गया है। इसे बाद में आध्यात्मिक रूप मिला। रास वर्णन में अलौकिक और लौकिक दोनों तत्वों का समावेश हुआ है। आध्यात्मिक तत्व में कृष्ण धन और गोपियाँ दामिनी हैं। लौकिक तत्व में कृष्ण नायक और गोपियाँ नायिकाएँ हैं। कभी राधा को प्रकृति और कृष्ण को पुरुष कहा गया है। इस रास में प्रवेश पाना पुष्टि भक्तों का लक्ष्य होता है। इस रास का वर्णन करना पुष्टिभक्तों ने अपनी शक्ति के बाहर की बात मानी है। रास का प्रभाव सार्वत्रिक और सार्वभौम है। १०

शुद्धाद्वैती मत के पुष्टिमार्ग में आरंभ में वैराग्य और संन्यास को जीव के लिए इष्ट कहा गया था। परंतु वल्लभाचार्यजी विवाह करके गृहस्थ जीवन का पालन करते हुए

अंतिम समय में साधु हो गये। परवर्ती आचार्य इसी के अनुसार पुष्टि सिध्दांतों का आचरण करके गृहस्थ बनकर भी परमपद के अधिकारी समझे गये। इस तरह पुष्टिमार्ग में वैराग्य और कठिन तपस्याइ.को अनावश्यक माना गया है। इस में तनुजा, वित्तजा और मानसी भक्ति से परमपद की प्राप्ति तथा ईश्वरी अनुग्रह को संभव बताया है। पुष्टि भक्ति मुख्यत: प्रेम लक्षणा है। पुष्टिमार्ग मानव मात्र का धर्म है। समाज की किसी विशिष्ट जाति अथवा वर्ग का नहीं है।

वल्लभाचार्यजी के पुत्र विठ्ठलनाथजी ने अष्टछाप की स्थापना करके संगीत, काव्य और गीतों से भारतीय वातावरण को मधुर भक्ति से भर दिया। परंतु आगे चलकर वित्तजा भक्ति का जोर जैसे जैसे बढता गया, वैसे वैसे मंदिरों का धन-वैभव बढा, उत्सवों में वैभव प्रदर्शन शुरु हुआ। सामान्य जनता उसी ओर आकर्षित होने लगी। साथ ही पुष्टिमार्ग के परिवर्ती आचार्य गद्दी के लायक भी नहीं रहे। उन्होंने भक्ति के पवित्र आखाडों में वेश्याओं के नृत्य और मदिरा के दौर चलाए। इस तरह यह भक्ति मार्ग समय के साथ आगे पतित हुआ और इस के केंद्रों की दुर्दशा हुई।

निष्कर्ष

आमुख

सूरदास का जीवन वृत्त, रचनाएँ तथा पुष्टि संप्रदाय के दार्शनिक विवेचन के संबंध में हम इस निष्कर्ष पर आजाते हैं।

१] सूरदास का जन्म सं. १५३५ वैशाख शुक्ल पंचमी के दिन हुआ था।

२] सूरदास जन्मांध थे। उन्हें भगवत् कृपा से दिव्य दृष्टि प्राप्त थी।

३] कम उम्र में ही सूरदास ने घर त्यागा और सं. १५५४ में वे मथुरा पहुँचे।

४] सं. १५६७ में वल्लभाचार्यजी ने उन्हें पुष्टिमार्ग की दीक्षा दी। तबसे देहावसान तक गोवर्धन पर्वत के नाथ मंदिर की कीर्तन सेवा में रहे। उनका देहावसान विद्वानों ने सं. १६४० माघ शुद्ध द्वितिया को मान्य किया है।

५] सूरदास की रचनाओं को लेकर विवाद है। उनकी प्राय: सभी रचनाएँ "सूरसागर" में एकत्रित हैं।

६] पुष्टिमार्गी दर्शन शुद्धाद्वैतवादी है। "सूर-साहित्य" में इसकी सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

000